



2026:AHC-LKO:8765-DB

सुरक्षित दिनांक : 13.01.2026

परिदत्त दिनांक : 05.02.2026

इलाहाबाद उच्च न्यायालय
लखनऊ
विशेष अपील संख्या – 239/2023

उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रमुख सचिव तकनीकी शिक्षा विभाग, उ.प्र. सरकार, लखनऊ

एवं 3 अन्य

...अपीलकर्ता(गण)

बनाम

राजेन्द्र दत्त शर्मा

... प्रत्यर्थी (गण)

अपीलकर्ता (गण) के अधिवक्ता: – मुख्य स्थायी अधिवक्ता

प्रत्यर्थी (गण) के अधिवक्ता :- मोहम्मद तौसीफ सिद्दिकी

सह 34 अन्य संबद्ध वाद

न्यायालय संख्या – 1

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय

माननीय न्यायमूर्ति अबधेश कुमार चौधरी

(द्वारा न्यायमूर्ति राजन रॉय)

(1) वाद सुना गया।

(2) यह राज्य और उसके अधिकारियों द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 (एतस्मिनपश्चात 'नियमावली, 1952' के रूप में संदर्भित) के अध्याय VIII नियम 5 के अंतर्गत दायर विशेष अपीलों का एक समूह है, जिसके माध्यम से विद्वान एकल न्यायाधीश पीठ द्वारा रिट याचिकाओं के एक समूह को स्वीकार करते हुए पारित निर्णय और आदेश दिनांक 17.02.2023 को चुनौती दी गई है।

(3) वाद के तथ्य संक्षेप में यह हैं कि उत्तरदाताओं-याचिकाकर्ताओं को दैनिक वेतन, निर्धारित कर्म, तदर्थ

अस्वीकरण:- अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है एवं इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी एवं सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

आदि के आधार पर नियुक्त किया गया था। उनकी सेवाओं को बाद में नियमों के अनुसार विनियमित कर दिया गया था। इन उत्तरदाताओं-याचिकाकर्ताओं ने पुरानी पेंशन योजना के अंतर्गत पेंशन के भुगतान के लिए अर्हकारी सेवा की गणना के प्रयोजनों के लिए दैनिक वेतन, कार्य-प्रभार, तदर्थ आदि के आधार पर प्रदान की गई अपनी सेवाओं की गणना किये जाने के निर्देश देने की मांग करते हुए एक रिट याचिका दायर की थी। अपीलकर्ताओं द्वारा यह दावा किया गया है कि रिट याचिका दायर करने के समय, अधिकांश उत्तरदाता-याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त हो चुके थे

(4) यह रिट याचिकाएं 'प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य' (2019) 10 एससीसी 516 वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय और इसके आधार पर दिए गए अन्य निर्णयों के आधार पर दायर की गई थीं। हालांकि, प्रेम सिंह (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद, उत्तर प्रदेश अध्यादेश संख्या 19 वर्ष 2020 अर्थात् उ.प्र. पेंशन के लिए अर्हकारी सेवा और विधिमान्यकरण अध्यादेश, 2020 दिनांक 21.10.2020 को प्रकाशित किया गया था जो अंततः एक अधिनियम बन गया, जिसका शीर्षक है, उ.प्र. पेंशन के लिए अर्हकारी सेवा और विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 (इसके बाद अधिनियम, 2021 के रूप में संदर्भित)। इस अधिनियम के माध्यम से, उ.प्र. सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 की धारा 2 में निहित 'अर्हकारी सेवा' (इसके बाद 'नियमावली, 1961' के रूप में संदर्भित) को पुनः परिभाषित किया गया था। यह विधिमान्यकरण अधिनियम इसलिए अधिनियमित किया गया था ताकि प्रेम सिंह (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार को हटाया जा सके और इसके परिणामों से बचा जा सके। अधिनियम, 2021 की वैधता माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर याचिकाओं के एक समूह में चुनौती के अधीन है। कुछ याचिकाएं इस न्यायालय के समक्ष भी दायर की गई हैं। सुनवाई के दौरान सभी पक्षों ने इन तथ्यों को स्वीकार किया।

(5) जो भी हो, विद्वान एकल न्यायाधीश ने विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 की धारा 2 का सीमित निर्वचन करते हुए उत्तरदाताओं-याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका को स्वीकार कर लिया है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि उक्त प्रावधान या विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 के किसी अन्य प्रावधान की वैधता को चुनौती दिए बिना और किसी भी रिट याचिका में इस संबंध में कोई अभिवचन न होने के बावजूद और न ही सुनवाई के दौरान इस बिंदु पर कोई तर्क दिए जाने के बावजूद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रावधान का सीमित निर्वचन किया है और रिट याचिका को स्वीकार कर लिया है जो तथ्यों और विधि, दोनों ही दृष्टिकोणों से स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, उपरोक्त अधिनियम की वैधता पहले से ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष

अस्वीकरण:- अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है एवं इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी एवं सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

विचाराधीन थी, इसलिए, इस कारण से भी विद्वान एकल न्यायाधीश के लिए उपरोक्त अनुसार सीमित निर्वचन की प्रक्रिया प्रारंभ करने का कोई अवसर नहीं था।

(6) इस संबंध में उत्तरदाताओं-याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता से प्रश्न किये गए किया गया, जिस पर उन्होंने अत्यंत निष्पक्षता से प्रस्तुत किया कि रिट न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई अभिवचन नहीं था। वास्तव में, विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष दलीलों के दौरान भी सीमित निर्वचन के सिद्धांत को लागू करने का यह बिंदु कदापि प्रकाश में नहीं आया था, लेकिन विद्वान एकल न्यायाधीश ने उक्त सिद्धांत के आधार पर रिट याचिका का निर्णय किया है।

(7) हमने हमारे समक्ष आक्षेपित निर्णय के साथ-साथ अभिवचन आदि का अवलोकन किया है और पाया है कि विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 या उसमें निहित किसी प्रावधान की वैधता को चुनौती दिए बिना और राज्य को यह नोटिस दिए बिना कि न्यायालय सीमित निर्वचन के सिद्धांतों को लागू करने का इरादा रखती है, यह मानते हुए कि ऐसी किसी चुनौती के अभाव में ऐसा किया जा सकता था, अधिनियम, 2021 की धारा 2 का सीमित निर्वचन करते हुए आक्षेपित निर्णय पारित किया गया है, और इस प्रकार यह धारित किया गया है कि उत्तरदाताओं-याचिकाकर्ताओं द्वारा अस्थायी/स्थायी पद पर दी गई सेवाओं को एक ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया कार्य माना जाना चाहिए जो किसी पद पर है, चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, अन्यथा, यह प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से प्रभावित होगा। वास्तव में, इस प्रक्रिया में, इस तथ्य को अनदेखा करते हुए कि किसी भी रिट याचिका में विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 को ऐसी कोई चुनौती नहीं दी गई थी और न ही इस संबंध में कोई अभिवचन था, विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस तथ्य पर भी विचार किया है कि किस आधार पर विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 पारित किया जा सकता है। अभिवचन का मुख्य उद्देश्य दूसरे पक्ष को याचिकाकर्ता के वाद के संबंध में जानने देना है ताकि वह इसका उत्तर दे सके। विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष रिट याचिकाओं के न्यायनिर्णयन में राज्य को इस प्रकार आश्चर्यचकित नहीं किया जा सकता था।

(8) हम इसी संदर्भ में सीमित निर्वचन के सिद्धांत और किसी विधि पर इसके लागू होने से संबंधित विधि का उल्लेख कर सकते हैं जैसा कि (2011) 13 एससीसी 262 'राजस्थान राज्य और अन्य बनाम संयम लोढ़ा' में उल्लिखित है, जिसमें माननीय न्यायाधीश ने पैरा 12 में निम्नवत धारित किया है:-

"12. यह सच है कि किसी भी अधिनियम के किसी भी प्रावधान का सीमित निर्वचन किया जा सकता है

अस्वीकरण:- अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है एवं इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी एवं सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

ताकि उसमें मौजूद आपत्तिजनक या असंवैधानिक तत्व को मिटाया जा सके या इसे ऐसे अधिनियम के उद्देश्य के अनुरूप बनाया जा सके। इसी प्रकार, कार्यकारी अनुदेशों का भाग बनने वाले नियम को भी अमान्यता से बचाने या सरकार की घोषित नीति के अनुरूप बनाने के लिए सीमित निर्वचन किया जा सकता है। जब न्यायालय किसी नियम को दोषपूर्ण या संवैधानिक या वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन करने वाला पाते हैं, तो वे नियम को असंवैधानिक या अमान्य घोषित करने के बजाय, जहाँ भी संभव और व्यावहारिक हो, एक उदार निर्वचन द्वारा उसका सीमित निर्वचन करने का प्रयास करते हैं। लेकिन इस मामले में ऐसा कोई अवसर नहीं आया क्योंकि नियम 5 की वैधता को कोई चुनौती नहीं दी गई थी और पक्षकारों ने उक्त नियम की वैधता पर विवाद नहीं किया था। इसलिए हमारा विचार है कि राहत कोष नियमावली को चुनौती न दिए जाने और राज्य सरकार को नियम 5 की वैधता का बचाव करने का अवसर न मिलने की स्थिति में, उच्च न्यायालय को उक्त नियम को संशोधित या उसका सीमित निर्वचन नहीं करना चाहिए था।"

(9) हम माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय एआईआर 2023 एससी 1685 'अरुप भुइयां बनाम असम राज्य और अन्य' का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने अरुप भुइयां बनाम भारत संघ (2011) 3 एससीसी 377 के साथ-साथ 'केरल राज्य बनाम रनीफ' (2011) 1 एससीसी 784 के मामले में कुछ अन्य पहले के निर्णयों की शुद्धता के संबंध में उसे संदर्भित एक निर्देश पर विचार कर रही थी। उस निर्देश में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यूएपीए, 1967 की धारा 10(क)(i) के सीमित निर्वचन पर विचार किया। पैरा संख्या 11 से 11.5 नीचे उद्धृत किया गया है:-

"11. उपरोक्त तथ्यात्मक पक्षों के आलोक में अब हम रनीफ: (एआईआर 2011 एससी340) (उपरोक्त), अरुप भुइयां (एआईआर 2011 एससी957) (उपरोक्त) और इंद्रा दास (2011 एआईआर एससीडब्लू 1223) (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के निर्णयों की शुद्धता पर विचार करेंगे:

11.1. अब जहाँ तक अरुप भुइयां: (एआईआर 2011 एससी957) (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा यूएपीए, 1967 की धारा 10(क)(i) को सीमित निर्वचन करने का संबंध है, प्रारंभ में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि विधि के किसी प्रावधान का ऐसा सीमित निर्वचन भारत संघ को सुने बिना और/या भारत संघ को कोई अवसर दिए बिना नहीं किया जा सकता था।"

अस्वीकरण:- अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है एवं इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी एवं सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

11.2. जब भारत संघ की अनुपस्थिति में संसदीय विधि के किसी प्रावधान का सीमित निर्वचन किया जाता है, तो इससे राज्य के हितों को भारी क्षति होने की संभावना होती है। यदि भारत संघ को यूएपीए, 1967 की धारा 10(क)(i) के प्रावधानों पर अपना पक्ष रखने का अवसर दिया गया होता, तो भारत संघ ने यूएपीए की धारा 10(क)(i) के पक्ष में तर्क दिए होते, जिसमें ऐसे प्रावधान के अधिनियमन का उद्देश्य और प्रयोजन और यहाँ तक कि यूएपीए का उद्देश्य और प्रयोजन भी सम्मिलित होता। जहाँ तक श्री पारिख, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा इस न्यायालय द्वारा संजीव कोक: (एआईआर 1983 एससी239) (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय का आश्रय लेते हुए दिए गए इस तर्क का संबंध है कि अंततः न्यायालय किसी प्रावधान को असंवैधानिक घोषित होने से बचाने के लिए उसकी व्याख्या करे और उसका सीमित निर्वचन करे, यह सच है कि अंततः विधि और/या विशेष विधि की व्याख्या करना न्यायालय का कार्य है। हालाँकि, प्रश्न न्यायालयों की शक्ति का नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या यह भारत संघ को सुने बिना किया जा सकता है?

11.3. अन्यथा भी, यूएपीए की धारा 10(क)(i) की संवैधानिकता को किसी चुनौती के अभाव में, इस न्यायालय द्वारा उक्त प्रावधान के सीमित निर्वचन का कोई प्रश्न ही नहीं था।

इसलिए, यूएपीए, 1967 की धारा 10(क)(i) की संवैधानिक वैधता को चुनौती न दिए जाने की स्थिति में, इस न्यायालय के पास उक्त प्रावधान को सीमित निर्वचन करने का कोई अवसर नहीं था।

11.4. अन्यथा भी, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा सुब्रमण्यम स्वामी और अन्य बनाम राजू, द्वारा सदस्य किशोर न्याय बोर्ड और अन्य, (2014) 8 एससीसी 390: (एआईआर 2014 एससी1649) वाद में टिप्पणी की गई और धारित किया गया कि किसी विधि के प्रावधान के सीमित निर्वचन करने का आश्रय तब नहीं लिया जा सकता जब किसी प्रावधान का अर्थ स्पष्ट और असंदिग्ध हो और विधायी मंशा स्पष्ट हो। इस न्यायालय ने इसके बाद "सीमित निर्वचन सिद्धांत" के मूलभूत सिद्धांत को निम्नानुसार प्रतिपादित किया है:

"न्यायालयों को पहली बार में विधि को शाब्दिक रूप से पढ़ना चाहिए। यदि इस प्रकार के पठन और समझने पर असंवैधानिकता का दोष आकर्षित होता है, तो न्यायालयों को यह पता लगाना चाहिए कि क्या अनजाने कोई में विधायी लोप हुआ है। यदि ऐसी मंशा को बिना विधायी प्रक्रिया के तार्किक रूप से विवक्षित

माना जा सकता है, तो अधिनियम को असंवैधानिकता से बचाने के लिए सीमित निर्वचन किया जा सकता है। पुनरावृत्ति के मूल्य पर, यह टिप्पणी की जाती है कि किसी विशेष विधि को असंवैधानिकता से बचाने के लिए भी उसका सीमित निर्वचन करना तब तक स्वीकार्य नहीं है जब तक कि ऐसे प्रावधान की संवैधानिकता चुनौती के अधीन न हो और भारत संघ को किसी विशेष संसदीय विधि का बचाव करने का अवसर न दिया गया हो।"

11.5. उपरोक्त के आलोक में इन तीनों निर्णयों में, इस न्यायालय को यूएपीए, 1967 की धारा 10(क)(i) का सीमित निर्वचन नहीं करना चाहिए था, विशेष रूप से तब जब न तो यूएपीए, 1967 की धारा 10(क)(i) की संवैधानिक वैधता चुनौती के अधीन थी और न ही भारत संघ को सुना गया था।"

(10) संयम लोढ़ा (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय का अनुसरण माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक बाद के निर्णय एआईआर 2025 एससी195 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय आदि बनाम गीतांजलि तिवारी (पांडेय)' में किया गया था। वास्तव में, उक्त निर्णय में विधि के किसी प्रावधान के सीमित निर्वचन से संबंधित विधि पर विस्तार से चर्चा की गई थी।

(11) उपरोक्त निर्णयों से, यह स्पष्ट है कि सीमित निर्वचन के सिद्धांत को लागू करने के लिए अपेक्षाओं में से एक यह है कि वैधानिक प्रावधान या स्वयं विधि की संवैधानिकता/वैधता चुनौती के अधीन होनी चाहिए और यह भी कि भारत संघ या राज्य, जैसा भी मामला हो, को ऐसी चुनौती या प्रावधान को सीमित निर्वचन करने के आशय का नोटिस प्राप्त होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, इस संबंध में अपेक्षित अभिवचन होने चाहिए। उपरोक्त के अभाव में, न्यायालय द्वारा किसी भी प्रावधान का सीमित निर्वचन मनमाना होगा। इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने 'कनई राम और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य' (2024) 9 एडीजे 92 में इस पक्ष पर भी विचार किया है। वास्तव में, उन्होंने भारत के सर्वोच्च न्यायालय के 'कोल इंडिया लिमिटेड और अन्य बनाम भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग' (2023) 10 एससीसी 345 के मामले में एक पूर्व निर्णय का संदर्भ दिया जिसमें एक तर्क यह था कि अधिनियम की वैधता को कोई चुनौती नहीं दी गई थी अतः चुनौती के अभाव में विधि का सीमित निर्वचन करने की कोई संभावना नहीं थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पैरा 128 में इस पर विचार किया गया और उत्तर दिया गया:-

"128. कुछ मुख्य विशेषताएं ध्यान देने योग्य हैं। पहली बात यह है कि अधिनियम को कोई चुनौती नहीं दी

अस्वीकरण:- अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है एवं इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी एवं सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

गई है। दूसरी बात, अधिनियम को जैसा वह स्पष्ट रूप से लिखा है वैसा ही लेते हुए, विभाजन का आदेश देने की शक्ति और, धारा 28(2) में सूचीबद्ध सभी चीजें स्पष्ट रूप से भारत के प्रतिस्पर्धा आयोग (CCI) को प्रदान की गई हैं। अधिनियम की धारा 60 में निहित सामान्य 'तथापि' खंड के अतिरिक्त, अधिनियम की धारा 28 के संबंध में एक ध्यान देने योग्य विशेषता यह है कि इसे धारा 28(1) में प्रचुर सावधानी के रूप में और भी स्पष्ट कर दिया गया है कि के प्रतिस्पर्धा आयोग जो भी आदेश दे सकता है वह किसी भी अन्य तत्समय लागू विधि में किसी भी बात के निहित होने के बावजूद होगा। संसद ने राष्ट्रीयकरण अधिनियम और इस अधिनियम, दोनों को बनाया है। विधायी सक्षमता की कमी का कोई प्रश्न ही नहीं है। हमें अधिनियम की वैधता पर निर्णय घोषित करने के लिए नहीं कहा गया है। चुनौती के अभाव में भी प्रयास किए जाने के आधार पर आगे बढ़ने पर भी, प्रावधान का सीमित निर्वचन करने की बिल्कुल भी संभावना नहीं है। प्रावधान के शब्द इसे सीमित निर्वचन करने की अनुमति नहीं देते हैं। इसलिए, यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि संसद ने अधिनियम के उचित कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए, प्रभुत्वशाली शक्ति का आनंद लेने वाले उद्यम के विभाजन का आदेश देने की शक्ति प्रदान करने का इरादा किया है। इसमें अपीलकर्ता भी सम्मिलित होंगे। हमें, निस्संदेह, प्रावधान को इस रूप में समझना चाहिए कि यह ऐसी शक्ति नहीं है जिसका प्रयोग हल्के में किया जाए। यह प्रभुत्वशाली स्थिति के दुरुपयोग को रोकने के लिए सुनिश्चित करने के लिए एक विशेष शक्ति है। शक्ति की व्यापकता धारा 27 में स्पष्ट होती है। हम प्रासंगिक रूप से देखते हैं कि यद्यपि एक उद्यम और एक समूह द्वारा प्रभुत्वशाली स्थिति का दुरुपयोग हो सकता है, जिसे प्रतिबंधित करने का प्रयास किया गया है, धारा 28 एक उद्यम के विभाजन के बारे में बात करती है। उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमें अधिनियम के जाल से बचने के लिए बनाए गए मामले में कोई योग्यता नहीं मिलती है।"

(12) उपरोक्त के आधार पर, **कनई राम (उपरोक्त)** के मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश ने राय दी कि सीमित निर्वचन के सिद्धांत का आह्वान वहां नहीं किया जा सकता जहां किसी विधि की वैधता को कोई चुनौती नहीं दी गई है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने विधि के विभिन्न प्रावधानों के सामंजस्यपूर्ण निर्वचन की तुलना में सीमित निर्वचन के सिद्धांत के अनुप्रयोग को वरीयता दी।

(13) इस मामले में, विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 या इसके किसी भाग की संवैधानिकता को कोई चुनौती न होने के अतिरिक्त, रिट याचिकाओं में इस संबंध में या सीमित निर्वचन के संबंध में कदापि कोई भी अभिवचन

नहीं था, न ही सुनवाई के दौरान इस बिंदु पर चर्चा और तर्क-वितर्क हुआ था जैसा कि उत्तरदाताओं-याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता विशेष रूप से डॉ. रमेश कुमार श्रीवास्तव द्वारा स्वीकार किया गया है।

(14) चूंकि यहां आक्षेपित संपूर्ण निर्णय, विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 की धारा 2 के सीमित निर्वचन पर आधारित है जो कि ऊपर चर्चा की गई विधि के आलोक में नहीं किया जा सकता था, इसलिए हमारी राय है कि संबंधित निर्णय इस आधार पर संधार्य नहीं है। तदनुसार, हम आक्षेपित निर्णय को अपास्त करते हैं। परिणामस्वरूप, सभी रिट याचिकाएं अपनी मूल संख्या पर पुनर्स्थापित होंगी और अब उपयुक्त एकल न्यायाधीश पीठ द्वारा विधि के अनुसार उन पर विचार किया जाएगा।

(15) तदनुसार, अपीलें स्वीकार की जाती हैं।

(16) दिनांक 09.03.2026 को उन सभी रिट याचिकाओं को, जिनसे यह अपीलें उद्भूत हैं, विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष सूचीबद्ध किया जाए।

(न्यायमूर्ति अबधेश कुमार चौधरी) (न्यायमूर्ति राजन रॉय)

5 फरवरी, 2026

शानू